छतन और मास्टर साहब

धनश्याम तिवारी

बात उन दिनों की है जब मैं और मेरा मित्र दोनों एक प्राथमिक शाला में बच्चों के बीच परीक्षण से संबंधित काम के लिए नियमित जाते थे।

उन दिनों हम जिस शाला में परीक्षण कर रहे थे वहां दो माह से नियमित आना जाना हो रहा था। किन्तु इन दो महीनों में आज पहला दिन था जब हमने पहली कक्षा के बच्चों के साथ पूरा दिन बिताया था। उस कक्षा की दो खूबियां जीवन भर नहीं भूल पाऊंगा। पहली – बच्चों का बेबाक बोलना

यानी किसी का किसी से झगड़ा हुआ तो बिना हिचकिचाए मां-बहन की गालियां देना। वैसे गालियां गुस्से या झगड़े में ही नहीं बल्कि आपसी बातचीत में भी खुलकर (गुरुजी से डरे बिना) इस्तेमाल की जाती थीं। दूसरी खूबी था – 'छतन' ऊर्फ गूंगा। ये छतन महाशय लगभग आठ वर्ष के थे। कक्षा में सबसे बड़े दिखाई देते थे। सभी बच्चे और गुरुजी इन्हें 'गूंगा' कहकर ही पुकारते थे। वैसे छतन स्वभाव से बहुत ही हंसमुख था। अपनी मातृभाषा गोंडी में थोड़ा-थोड़ा बोल लेता था। कभी-कभी खड़ी बोली (हिन्दी) भी बोलता था। वैसे वो सभी कुछ सुनता समझता था।

पहली मुलाकात में ही हमारी छतन से दोस्ती हो गई। दोस्ती की वजह क्या रही ये तो पता नहीं पर शायद हम उसे छतन कहकर पुकारते थे ये उसे अच्छा लगता था। हमने छतन के व्यवहार को समझने की कोशिश की। बंदा कतार में सबसे पीछे बैठता, पूरे समय आसपास बैठे बच्चों को डांटता रहता कि मास्साब जो कर रहे हैं उसे सुनाकर या लिखकर बताओ आदि आदि – पर खुद लिखने की बात हो तो कुछ भी नहीं करता था। जब किसी बच्चे को पानी पीना होता उसे हैंडपम्प पर ले जाता और पानी पिलाकर ले आता।

छतन के पास बस्ता नहीं था, स्लेट

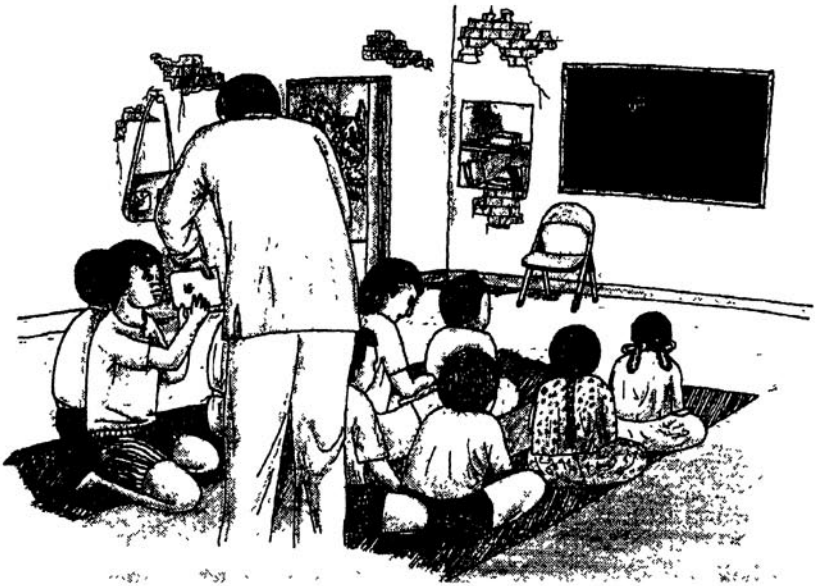

थी लेकिन बड़ी अजीब। कुछ-कुछ फावड़े की तरह का टीन का टुकड़ा था जिसे जब मन करता तो स्लेट की तरह इस्तेमाल कर लेता। तीन दिन में हमारी उससे इतनी दोस्ती हो गई थी कि वो टूटे-फूटे हिन्दी के वाक्यों में जवाब देने लगा था। कभी खुद के तो कभी घर के हालचाल सुना देता। उसकी बात से यह स्पष्ट हो गया था कि गांव के लोगों ने उसे गूंगा मान लिया है। उसे इस बात से सख्त आपत्ति थी कि गुरुजी भी ऐसा ही मानते हैं पर वो इस बात को व्यक्त नहीं करता था। घर वालों की उसे पढ़ाने की कुव्वत नहीं थी। जो भी वह कर रहा था अपने बलबूते पर।

एक दिन मैंने तख्ते पर 'क' लिखा और सभी बच्चों से लिखकर दिखाने को कहा; छतन को भी प्रेरित किया कि तख्ते पर लिखा अक्षर लिखकर दिखाओ। छतन मुस्कुराता रहा पर उसने लिखा नहीं। लेकिन आसपास बैठे बच्चों से लिखकर दिखाने को कहता रहा। थोड़ी देर बाद मैंने *'क'* को मिटाकर *'न'* लिख दिया और सभी बच्चों से कहा अब *'न'* लिखकर दिखाओ। छतन से भी आग्रह किया। सभी बच्चों के साथ छतन ने भी लिख कर दिखाया। लेकिन 'क' लिखा। इसके बाद हमने क्रमशः चार अक्षर और लिखे। हर बार छतन वो अक्षर लिखकर दिखाता जिसे हम पहले लिखकर मिटा

चुके होते। वह ऐसा क्यों करता था, यह बात हमारे लिए पहेली ही रही। इसके बाद सभी बच्चों ने इच्छा ज़ाहिर की कि वे चित्र बनाना चाहते हैं; और सभी बच्चे चित्र बनाने में जुट गए। छतन भी उनमें से एक था।

लगभग आधा घंटे बाद छतन ने अपनी फावड़ानुमा स्लेट पर कुछ चित्र बना लिए थे और इंतज़ार कर रहा था कि और बच्चों की तरह उससे भी पूछा जाए, "बताओ क्या-क्या बनाया है?" थोड़ी ही देर में मैंने उससे पूछ लिया, "छतन तुमने क्या बनाया? बताओ।"

- "चित्र।"

"अरे वाह! ये क्या बनाया?" ऊपर बने चित्र की ओर इंगित करते हुए मैंने पूछा।

- "लुगई," छतन ने कहा।
- "क्या कर रही है?"
- "पानी ला रई।"

"अरे यार छतन। ये चल सकती है क्या? इसके पैर तो..."

- "पेटीकोट पहनी है, मास्साब।"
- "अरे वाह! और ये क्या बनाया?"
- "हवईजहाज।"
- "कहां देखा था?"
- "ऊपर उड़ती है, मास्साब।"

छतन की सोच और उसके इस सृजनात्मक काम ने मुझे बहुत प्रभावित किया। मैंने उसके काम को बड़े मास्टर साहब (उस शाला के प्रधानाध्यापक) को दिखाया। खासकर इसलिए कि पूरी शाला में बच्चों के साथ एक मात्र यही मास्टर साहब थे जो छतन को गूंगा कहकर पुकारते थे। बाकी शिक्षक तो 'ऐ, ओ' कहकर काम चला लेते थे।

मैंने छतन को बड़े मास्टर साहब के पास पहुंचा दिया। खुद खिड़की के पास खड़ा हो गया। मेरा अनुमान था कि इस रचनात्मकता को देखकर छतन के प्रति मास्टर साहब के जो भी पूर्वाग्रह हैं वो खत्म हो जाएंगे।

मास्टर साहब ने मेरे आग्रह पर छतन के चित्र देखे, "ला रे बता, क्या बनाया?"

छतन ने स्लेट मास्साब की टेबिल पर रख दी, "जरा पास तो आ। ये क्या बनाया?"

ऊपर बने चित्र पर अंगुली रखते हुए छतन ने खुश होकर बताया, "लुगई।"

"ज़रा पास तो आ," छतन को पास खींचते हुए।

और इस तरह मास्साब ने छतन की उभरी हुई पसली के नीचे सिकुड़े से पेट के आसपास, चिमटी भर खाल ढूंढ ली। जैसा की चाबी भरने के लिए करते हैं, मास्साब ने अपनी पकड़ मज़बूत करते हुए बातचीत का क्रम आगे बढ़ाया।

छतन के चेहरे पर उभरी पीड़ा मुझे बार-बार अपनी गलती का अहसास करा रही थी। चाहते हुए भी मैं मास्साब की इस प्रतिक्रिया में हस्तक्षेप न कर सका।

क्या बनाया, 'लुगई,' चाबी थोड़ी घुमाते हुए, "इसके पांव तो बनाए नहीं?" .

"पेटीकोट पहनी है।"

"अच्छा बेटा और ये क्या बनाया?" दूसरे चित्र की ओर इशारा करते हुए, "हवईजहाज।"

"तेरा बाप भी कभी हवाई जहाज़ में बैठा है?" (चाबी और घुमाई)

छतन लगभग चीखने-सी स्थिति में पंजे के बल खड़ा हो गया और अगले ही क्षण अपनी स्लेट छुड़ाकर दरवाज़े पर खड़ा हो गया। इसके साथ ही ऊंची-ऊंची आवाज़ में गाली बकने लगा। मास्टर साहब ने कुर्सी छोड़ दी और टेबिल के नीचे लगभग छुपने की मुद्रा में मुझे आवाज़ दी, "ज़रा इसको सम्हालना।"

जैसे-तैसे मैंने छतन से स्लेट वापस ली। छतन इतना नाराज़ था कि पत्थर लिए काफी देर तक इधर-उधर गाली बकता, बदला लेने के उद्देश्य से घूमता रहा। मेरी काफी कोशिश के बाद वो घर चला गया। इस घटना के बाद से वो स्कूल के आसपास तो आता था पर बड़े मास्टर साहब की उपस्थिति-से लौट जाता। बाद में हमने इस संदर्भ में मास्टर साहब से बात की, मास्टर साहब का रुख रचनात्मक कम आलोचनात्मक अधिक रहा।अंततः मैं शिक्षक को उनकी गलती का अहसास नहीं करवा पाया। इस घटना को कुछ साल गुज़र चुके हैं। छतन अब काफी बड़ा हो गया है। कभी-कभार अब भी मिलता है। उसे घटना तो याद होगी पर ऐसा लगता है कि ज़िक्र करना शायद उसे पसंद नहीं है।

घनश्याम तिवारी – एकलव्य के प्राथमिक शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध; शाहपुर उपकेंद्र में कार्यरत।